प्रथम अध्याय

राही मासूम रजा – व्यक्तित्व एवं कृतित्व

“राही मासूम रजा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व”

प्रस्तावना -

किसी कृति को समझ लेने में कृतिकार का परिचय अवश्य ही सहायक होता है। यह दूसरी बात है कि अपने प्रिय लेखक की जीवन रेखा से परिचय पाने की जिज्ञासा पाठक के मन में अनायास होती है। कलाकार का संपूर्ण जीवन उसकी कलाकृतियों में बिखरा हुआ होता है। कलाकार अपने जीवनानुभव को, सुख-दुःखों को प्रस्तुत करता रहता है। लेखक का व्यक्तित्व उसके साहित्य में झलकता है और व्यक्तित्व का निर्माण उसके पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवेश में ही होता है, जिसके बीच रहकर वह बड़ा हुआ है।

फलतः डॉ. राही मासू रजा के साहित्य को सही रूप में समझने के लिए उनके जीवन और व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है। जीवन की अनेक घटनाओं ने उनके चिंतनशील व्यक्तित्व को प्रभावित किया है। उनका संपूर्ण उपन्यास साहित्य कोरी कल्पना मात्र नहीं है। वरन् अधिकांश उपन्यासों में स्वयं लेखक उपस्थित है। मेरी धारणा है कि राही का जीवन परिचय उनकी कृतियों को समझ लेने में सहायक सिद्ध होगा। इसी वजह से यहाँ उनके जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन प्रस्तुत है।

1.1 जन्म -

1-9-1927

राही मासूम रजा का जन्म एक सितंबर उन्नीस सौ सत्ताईस को पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक शहर गाजीपुर के निकट एक छोटे-से गाँव बुध ही में हुआ। राही मासू रजा ने गाजीपुर का परिचय देते हुए कहा है- “आषाढ़ की एक काली रात में तुगलक के एक सरदार सैय्यद मसऊद गाजी ने बाढ़ पर आयी गंगा को पार करके गादिपुरी पर हमला किया। बाद में यह शहर गादिपुर से गाजीपुर हो गया। नाम शायद उपरी खोल होता है, जिसे बदला जा सकता है। नाम का व्यक्तित्व से कोई अटूट रिश्ता होता नहीं शायद।”[1] राही मासूम रजा जी के जीवन में गाजीपुर का बहुत

---

[1] राही मासूम रजा - आधा गाँव, पृ. 4

महत्त्वपूर्ण स्थान है। गाजीपुर और वहाँ की गंगा को अंत तक उन्होंने अपने हृदय से चिपकाए रखा था।

1.2 बचपन -

राही मासूम रजा का प्रारंभिक जीवन गंगौली और गाजीपुर इन दो गाँवों से संबंधित रहता है। गंगौली में सय्यद परिवारों के केवल दस घर थे और वे सभी उत्तर पट्टी और दक्खिन पट्टी में बसे हुए थे। उनमें से एक घर राजा मुनिर हसन का था। राही मासूम रजा की दादी मुनीर हसन् की बहन थी। वास्तव में दादी का ससुराल याने राही मासूम रजा की ददिहाल ढेकमा विजैली था। लेकिन दादी अपने पति के साथ मायके में ही बसी थी। इस कारण राही मासूम रजा का परिवार गंगौली का ही कहा गया। उनकी दादी की मृत्यु गंगौली में ही पागल की अवस्था में एक गढ़े में डूबकर हो गई थी।

1.3 परिवार -

राही मासूम रजा के पिता का नाम बशीर हसन् आब्दी था और वे गाजीपुर में एक कामयाब और होनहार वकील थे। यही कारण है कि गंगौली उनका गाँव होकर भी गाजीपुर में ही उनका निवास होता था। वहीं पर वे अपने पूरे परिवार के साथ रहा करते थे। केवल मोहरम और ईद के अवसर पर ही वे कुछ दिनों के लिए गंगौली जाकर रहा करते थे। राही मासूम रजा की प्रारंभिक शिक्षा गाजीपुर में ही हुई। घर में सुख और वैभव की कोई कमी नहीं थी। पिता की वकालत जोरों पर चलती थी। रजा जी के तीन भाई और चार बहनें थीं। बड़े भाई का नाम मुनीस रजा तथा दो छोटे भाई अहमद रजा और मेहंदी रजा हैं, जो उच्च पदों पर रहकर अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। परिवार में हमेशा रिश्तेदारों और अन्य आने-जानेवाले लोगों की भीड़ लगी रहती थी। घर में नौकर की कमी नहीं थी। गाजीपुर में आब्दी परिवार बड़े शान और शौकत का जीवन बिताता था। स्वतंत्रतापूर्व काल के जमींदारों और नवाबों की तरह उनका जीवन था।

राही मासूम रजा का जीवन इस प्रकार से रईसी वातावरण में गुजरा हुआ दिखाई देता है। घर में घोड़े और कुत्ते भी थे। राही जी अपने बड़े भाई के साथ घुड़स्वारी करते थे, तो कभी पतंग उड़ाते थे। उस जमाने में भी उन्हें और उनके भाइयों को क्रिकेट खेलने का भी शौक था। दिन का सारा समय वे पतंग उड़ाने, घुड़सवारी करने और क्रिकेट खेलने में बिताते थे। उनका स्वभाव

मिलनसार, नेक और उदार दिखाई देता है। राही जी को अपनी छोटी बहन अकसरो बेगम से बेहद प्यार था। उनका बचपन बहुत ही लाड़ प्यार और मस्ती में गुजरा।

1.4 शिक्षा तथा बीमारी -

राही मासूम रजा की प्रारंभिक क्षिा घर पर ही धार्मिक शिक्षा से प्रारंभ हुई। मौलवी मुनव्वर उनके पहले उसाद थे, जिनसे उन्होंने घर पर ही कुर्आन की शिक्षा प्रारंभ की। मौलवी ~~मुनव्वर से उन्हें प्रारंभ से ही नफरत थी,~~ जिसके कारण पढ़ने में उनका कभी दिल नहीं लगता था। कई बार तो वे उनसे पीटे भी जाने लगे। इसी समय राही के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। अचानक घर के लोगों के ध्यान में यह बात आ गई कि राही कुछ लंगड़ाते चल रहे हैं। प्रारंभ में तो इसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इतना ही नहीं उसे उनकी शरारत समझकर नजरअंदाज किया गया। लेकिन जब लंगड़ाने की उनकी आदत आम दिखाई दी तो उसे घर के लोगों ने गंभीरता से लेकर उनकी डॉक्टरी जाँच करवाई। जाँच करने पर पता चला कि उन्हें बोन टी. बी. हो गया है। परिवार के सभी लोगों को इस हादसे ने दुःखी बना दिया। बंदरों की तरह शरारतें करनेवाला राही मासूम रजा, हर एक को छेड़छाड़ करते घूमनेवाला मासूम एकदम उदास हो गया। इस घटनाने राही मासूम रजा का बचपन ही लूट लिया। उनकी टाँगों पर प्लास्टर चढ़ा दिया गया तो मासूम को मजबूरन बेबस होकर घरमें बैठना पड़ा। अब न तो वह शैतानी कर सकता था, न पतंग उड़ा सकता था, न अपनी बहन को 'सड़ी बू' कहकर चिढ़ा सकता था। वह बाहर दौड़ने के लिए जाना चाहता, लेकिन सभी उसे समझा-बुझाकर बिठाते। वह रो-रोकर चुप हो जाता था। राही मासूम रजा पूछते कि कब घोड़े पर बैठूँगा ? कब मैं पतंग उड़ाने बाहर जाऊँगा ?

राही मासूम रजा के जीवन में घटित इस घटना ने उन्हें जीवनभर का अपाहिज बना दिया। इस घटना का एक परिणाम यह हुआ कि वे अपनी उदासी मिटाने के लिए पुस्तकें पढ़ने लगे। उनके बड़े भाई मुनिस रजा उन्हें तरह-तरह की पुस्तकें लाकर देते और इस तरह उनकी उदासी कुछ कम हुई। घर का हर एक व्यक्ति उनको किसी प्रकार की तकलिफ न हो इसका खयाल रखता, उन्हें अधिक-से-अधिक बहलाने की कोशिश करता। उन्हें अपनी माँ से बेहद प्रेम था। माँ भी उन्हें अपने हाथ से खिलाती, उन्हें तरह-तरह की कहानियाँ सुनाकर उनका दिल बहलाने की कोशिश करती। उन्होंने कहा भी है, "मेरी तीन माँएँ हैं- एक नफीसा बेगम, जिन्होंने मुझे जन्म दिया है,

दूसरी गंगा जिसकी गोद में मैं बड़ा हुआ, तीसरी अलीगढ़ युनिवर्सिटी- जिसने मुझे आज लायक बना दिया है।''[1] राही जी को इन तीनों से लगाव था।

बचपन के दोस्तों में लालू और लड्डन का विशेष ध्यान है। इनमें से लालू इनका आत्मीय दोस्त था। लालू और लड्डन को लेकर मासूम अकसर सिनेमा देखने जाते थे। सिनेमा घरमें उनके लिए खास व्यवस्था की जाती थी। मासूम जब भी सिनेमा देखने जाते उनके साथ दोस्तों की एक टोली ही हुआ करती थी। फिल्म देखने का भी एक खास अंदाज हुआ करता था। नौकर द्‌वारा पहले ही पूरी व्यवस्था करवा दी जाती थी। सबके टिकट राही मासूम खरीदते थे। बीमारी के कारण इस समय उनके ठाठ-बाट और भी बढ़ गए थे। बचपन के इन दिनों में उनकी हर जिद्‌द पूरी की जाती थी। वे हंटर माँगते, तो हंटर आ जाता और नौकरों को मारते तो नौकर भी मार खा लिया करते थे। वे जो चाहते वह हुआ करता था। इस कारण उनका स्वभाव जिद्‌दी हो गया।

'कल्लू कक्का' का राही मासूम रजा के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके साहित्य में भी उनका उल्लेख आया है। राही के साहित्यिक व्यक्तित्व पर कल्लू कक्का के सहवास का काफी प्रभाव है। वास्तव में कल्लू कक्का का नाम अली हुसेना था, लेकिन मुहल्लेवाले उन्हें 'कल्लू कक्का' नाम से पुकारते थे। वे उनके घर के पुराने नौकरों में से एक थे। लेकिन परिवार के लोगों ने उन्हें कभी नौकर समझा ही नहीं था। 'किस्सा-गोई' उनका प्रमुख काम था। जैसे ही शाम ढलने लगती घर के सभी बच्चे उन्हें पकड़ लेते और कक्का कहानियाँ सुनाना शुरू करते। कहानी सुनते-सुनते ही बच्चे सो जाते और कल्लू कक्का की कहानी भी अधूरी ही रह जाती। लेकिन मासूम उन्हें छोड़ता ही नहीं था। वह रात-रात उनके साथ जागने के लिए तैयार रहता। फिर क्या लल्लू कक्कू राही मासूम रजा को 'तिलस्मे होशरुबा' सुनाना शुरू कर देते। कहानी का सिलसिला चलते रहता लेकिन राही मासूम रजा का दिल कभी नहीं भरता। वह उत्सुकतावश 'फिर क्या ?' कहता रहता। उस समय यह किसी को मालूम नहीं था कि बड़े होकर राही मासूम रजा 'होशरुबा', 'तहजीबी अनासार' पर अनुसंधान करेंगे और इसी विषय पर पीएच्. डी. की उपाधि प्राप्त करेंगे। बचपन में कल्लू कक्का द्‌वारा सुनी हुई 'तिलस्में होशरुबा'

---

[1] सं. कमलेश्वर - गर्दिश के दिन, पृ. 149

की कहानियाँ राही मासूम को इतना प्रभावित कर गई कि उन्होंने उसे अपने अनुसंधान का विषय बनाया।

1.5 वैवाहिक जीवन -

सतत के प्रयास से टी. बी. से मुक्ति तो मिली, लेकिन जीवनभर उन्हें एक पैर से लंगड़ाते हुए चलना पड़ा। उनके पिता बशीर हसन् आब्दी साहब अपने इस पुत्र के भविष्य को लेकर हमेशा परेशान रहते थे। उनकी बीमारी के कारण पढ़ाई में रूकावट भी पड़ी थी। जब वे अलीगढ़ मुस्लिम युनिव्हर्सिटी पहुँचे तब तक उन्होंने कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। छः वर्ष के प्रदीर्घ बीमारी के दौरान उनका पुस्तकों से प्यार बढ़ गया था और इसी प्यार के कारण वे अपनी पढ़ाई पूरी करने में पूरे मन से जुट गए। जब तक वे गाजीपुर में रहे थे वे हमेशा उदास रहा करते थे। पिता ने उनकी इस उदासी को दूर करने के लिए उनका विवाह करने का निर्णय लिया। लेकिन राही जी को पिता का यह फैसला मंजूर नहीं था। उनके उदासी का कारण कुछ और ही था। घर के सभी सदस्य भी पिता के इस प्रस्ताव पर सहमत हो गए और फैजाबाद जिला पोस्ट मास्टर की लड़की मेहर बानो से उनका विवाह पक्का हुआ।

राही मासूम रजा के जीवन में यह विचार एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में स्मरणीय है। मेहर बानो छठी कक्षा तक पढ़ी हुई एक सामान्य लड़की थी। राही की आयु भी उस समय बहुत कम थी। तेरह-चौदह साल की एक अल्लड़ लड़की से उनका विवाह तय हुआ था। जैसे की कहा जाता है राही से शादी के संबंध में कोई विचार-विमर्श नहीं किया गया था और निकाह की रस्म पूरी की गई। मेहर बानो एकदम सामान्य परिवार से एकदम ऊँचे रईस खानदान में आ टपकी थी। इसलिए उसे इस वातावरण में घुलमिल जाने में कुछ दिन लगे। इधर राही भी अपनी पत्नी में कोई रूचि नहीं दिखाते थे। वे उससे बात तक नहीं करते थे। इतना ही नहीं उन्होंने इस निकाह को कभी गंभीरता से लिया ही नहीं, उल्टे इस विवाह से उनके जीवन में एक अलग ही परिवर्तन का दौर शुरू हुआ। उनका किसी चीज में मन ही नहीं लगता था। वे हमेशा पुस्तकों में खोए रहते थे। हम कह सकते हैं कि उनकी वैचारिक, साहित्यिक जीवन की नींव यही तैयार हो रही थी। वैसे राही का परिवार आधुनिक विचारों से प्रभावित था और पाश्चात्य चालढ़ाल से परिचित था। बड़े भाई युनिस रजा प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे और पिताजी पक्के काँग्रेसी थे। ऐसे घर में एक

सामान्य परिवार से आई मेहर बानो स्वयं को निम्न महसूस करती। इधर राही ने उन्हें पत्नी के रूप में कभी स्वीकार ही नहीं किया। पति-पत्नी में शारीरिक संबंध भी नहीं था। यह बात बहुत दिनों तक घरवालों से छूपकर रह न सकी। मेहर बानो तो अल्लड़ बनी ही थी। वह कमसीन थी और उसमें बचपना अधिक था, वह दिल से मासूम को बहुत चाहती थी। वह अपने आपको उनके पसंद के अनुरूप ढालने का प्रयास करती थी। मजे की बात यह है कि उसने राही मासूम के साथ ही हाईस्कूल की परीक्षा भी पास की, उसके हर प्रयास के बावजूद भी राही में कोई परिवर्तन नहीं आया। वे हमेशा मेहर बानो को नजरअंदाज करते थे। घर के लोगों ने उनके संबंधों को लेकर चिढ़ाने की कोशिश की तो वे गुस्से से लाल हो जाते। मेहर बानो इन सभी बातों को अबला की तरह तीन साल तक झेलती रही। यह मामला धीरे-धीरे घर के बाहर जाने लगा। मेहर बानो के माता-पिता को भी इस बात का पता चला। मेहर बानो ने इन तीन सालों में जो पीड़ा, घुटन और अपमान को सहा होगा, इसका हम अंदाजा नहीं लगा सकते। माता-पिता सभी ने समझाने का प्रयास किया लेकिन किसी की न चली। अंततः तलाक का सवाल उठा तो राही ने खुलेआम कह दिया कि तलाक पिताजी देंगे, शादी पिताजी ने पक्की की थी। परिवार में तलाक की यह समस्या सिरदर्द बन गई। जैसे ही मेहर बानो को तलाक की बात मालूम हुई, वह तो बेचारी बेहोश हो गई। क्योंकि तलाक तो उस बेचारी ने कभी माँगा ही नहीं था। आखिरकार तलाक नामे पर पिताजी को ही हस्ताक्षर करने पड़े। बड़े दुःख के साथ मेहर बानो अपने पिताजी के घर लौट गई। मेहर बानो ने फिर आत्मनिर्भता के पथ पर दृढ़ता से चलकर जीवन के इतने बड़े हादसे से निराश न होकर दिन-रात कठोर परिश्रम किया, एम्. ए., पीएच्. डी. तक की उपाधियाँ प्राप्त की[6]। कम्युनिस्ट पार्टी में काम किया और दुनिया में अपनी एक अलग पहचान करा दी। उनका दूसरा विवाह भी हुआ और कुछ वर्षों तक कश्मीर विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के रूप में उन्होंने काम भी किया।

राही मासूम रजा को जीवन की इस घटना से कोई पछतावा नहीं था। वे इस तरह रहा करते जैसे उनके जीवन में कुछ घटा ही नहीं। उनके पिताजी वास्तव में इस घटना से बहुत आहत् हुए और वे बहुत दिनों तक राही पर नाराज रहे। उनके पिताजी की समझ में कभी यह यह नहीं आया कि आखिर राही मासूम ने उनके साथ और मेहरबानों के साथ इस प्रकार का व्यवहार क्यों किया ? हम केवल यह अनुमान लगा सकते हैं कि लंबी बीमारी के कारण उनमें एक प्रकार का

चिड़-चिड़ापन आ गया था। अचानक उनके जीवन की आजादी छीन ली गई थी, या यों कहीं कि उनमें कुछ मानसिक असंतुलन-सा आ गया था। जीवन के प्रति देखने का दृष्टिकोण ही बदल गया था। जीवन की इन दुखद घटनाओं के साथ-साथ बचपन से ही कुछ विद्रोही प्रवृत्तियाँ पनप रही थी, जो आगे चलकर साहित्य में उभरकर आई। बड़े भाई मुनिस रजा जो प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे, उनका बड़ा सहारा इन दिनों प्राप्त हुआ। राही की निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति थी, जो उनके साहित्य में प्रकट हुई है, उसी के बीज इन्हीं दिनों में बोए गए थे।

राही के जीवन में पहली शादी ने कोई महत्त्व नहीं रखा। किंतु आगे उन्होंने एक अवकाश प्राप्त कैप्टन की पत्नी से दूसरी शादी की। कहना जरूरी नहीं कि यह शादी उन्होंने अपनी मर्जी से की थी। इस विवाह से वे संतुष्ट थे। इस पत्नी से उनको एक संतान (लड़की) की प्राप्ति भी हुई।

1.6 राही के व्यक्तित्व को प्रभावित करनेवाला तत्कालीन परिवेश -

1.6.1 राजनीतिक परिवेश और राही -

राही के घर में पिताजी काँग्रेसी थे, तो बड़े भाई साहब समाजवादी विचारों से प्रभावित थे। वे समाजवादी आंदोलन से भी जुड़ गए थे। राही मासूम रजा जब पंद्रह वर्ष के थे, तब ही सन् 1942 के साम्यवादी आंदोलन से भी जुड़े हुए थे। साम्यवादी आंदोलन में भाग लेने किसी को भी कहे बिना गाजीपुर से लखनऊ गए थे। उसके बाद लखनऊ से इनका निरंतर संपर्क बना रहा। लखनऊ में ही वे प्रगतिशील लेखकों के संपर्क में आए। वे वैचारिक रूप से साम्यवाद की ओर आकृष्ठ हुए और आगे चलकर कट्टर साम्यवादी बने। एक ही घर में दो पार्टीयाँ थी। एक पिताजी की, जो काँग्रेसी थे, तो दूसरी मुनिस रजा की, जो प्रगतिशील विचारों से जुड़े थे। कहा जाता है कि उन्होंने गाजीपुर मेयर के चुनाव में अपने पिताजी के विरूद्ध खड़े साम्यवादी बब्बराय का खुलकर प्रचार किया और यह उनका पहला विद्रोह था। परिणामतः उनके पिताजी इस चुनाव में हार गए। आगे चलकर राही मासूम रजा अपने संपूर्ण जीवन में प्रगतिशील विचारधारा की राह पर चलते रहे। इस तरह चलते हुए उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। इतना ही नहीं उन्हें अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी को भी छोड़ना पड़ा।

1.6.2 सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक परिवेश और राही -

राही मासूम रजा का प्रारंभिक जीवन एक विशिष्ट धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश में बीता, जिसने उनके व्यक्तित्व को काफी हद तक प्रभावित किया।

राही घर पर एक विशिष्ट धार्मिक और सामाजिक वातावरण का प्रभाव था। एक और उनका परिवार कट्टर शिया मुसलमान था; तो दूसरी ओर अंग्रेजी शिक्षा-दिक्षा तथा अंग्रेजी और हिंदू संभ्रात परिवारों से सतत संपर्क के कारण परिवार में एक आधुनिक पाश्चात्य वातावरण का मेल भी था। बचपन में ही उन्हें किसे आदाब करना चाहिए और किसे नहीं, नौकरों से कैसा बर्ताव करना चाहिए तथा घर के बाहर के लोगों से कैसा बर्ताव करना चाहिए, यह सिखाया गया था। कभी-कभी इन रुढ़ियों के खोखलेपन से उन्हें चीढ़ आ जाती और वे फैसला करते कि अगर बस चला तो वे उन्हें तोड़ देंगे। घर में उन्होंने कुराण की शिक्षा प्राप्त की थी। वे रमजान के रोजे भी रखते थे और नमाज भी पढ़ते थे। लेकिन यह सब करने के अतिरिक्त उनके दिमाग में कुछ प्रश्न हमेशा उठते रहते थे, जिनका उत्तर उनके पास नहीं था। इस तरह धीरे-धीरे धार्मिक कर्मकांड के प्रति भी उनके मन में तिरस्कार की भावना निर्माण हो रही थी। धर्म से उनका लगाव भी कुछ कम हो रहा था। बचपन से ही वे जिद्दी तो थे ही धीरे-धीरे उनके स्वभाव में परिवर्तन हो गया। उनका विद्रोही स्वभाव ही उभरकर आने लगा।

धार्मिक कट्टरता और परंपरागत, खोखली, धार्मिक भावना से उन्हें चीढ़ पैदा हो गई थी। जब भी कभी मौका मिलता उन्हें तोड़ने के लिए वे आमदा रहते। वे मनुष्य और मनुष्यता में अधिक विश्वास करते थे। मोहर्रम का त्यौहार उन्हें अधिक प्रिय था, क्योंकि इमाम हुसैन उन्हें अपनी आस्था के प्रतीक लगते थे। 'आधा गाँव' में राही ने मोहर्रम के त्यौहार का बहुत खुलकर वर्णन किया है। संघर्ष और प्रतिद्वंदिता की भावना उनमें बचपन से ही थी। वे मनुष्य-मनुष्य में किसी प्रकार का भेद सहन नहीं कर सकते थे। गंगौली के सय्यदों का जो कि उत्तर पट्टी और दक्खिन पट्टी में विभक्त थे, उनके विश्वास, अंधःविश्वास, रहन-सहन आदि का उन्होंने बड़ा यथार्थ वर्णन किया है। गंगौली के सय्यद स्वयं को पाक हड्डी का समझकर चमारों और जुलाहों के बच्चों के साथ खेलना भी अपराध मानते थे। लेकिन राही ने इन बच्चों के साथ कबड्डी खेलकर यह अपराध किया था।

राही जी को अपनी माँ से बहुत प्यार था। दुर्भाग्यवश जिस समय माँ की मृत्यु हुई उस समय राही बच्चों के साथ क्रिकेट खेल रहे थे। उपस्थित लोगों ने राही को बहुत भला-बुरा कहा। माँ की मृत्यु से उन्हें बहुत गहरा सद्मा पहुँचा। अपने उपन्यासों और कविताओं में अपनी माँ के प्रति उनका श्रद्धाभाव देखने को मिलता है। उनके साहित्य के सभी पात्र असली हैं। जिन व्यक्तियों के संपर्क में वे आए, जीवन में जो भी कुछ उन्होंने अनुभव किया, जिन घटनाओं ने उन्हें अत्याधिक प्रभावित किया उन्हें ही राही ने अपने साहित्य में स्थान दिया है। वे जिस परिवार में पले, बड़े हुए थे उसमें ऊँच-नीच की दूरियाँ थीं और अमीरी-गरीबी की कमियाँ थीं। राही के मन में घर का यह वातावरण कचोट निर्माण करता था। उनके मन में आक्रोश और झुँझलाहट होती। राही मासूम रजा जैसे ही अवसर मिलता अपनी इस कड़वाहट को अपने साहित्य के माध्यम से बाहर निकालते थे।

राही मासूम रजा के पिता उच्च विद्याविभूषित होने के कारण घर में बहुत बड़ा पुस्तकों का संग्रह था। उनमें अरबी-फारसी में लिखी धार्मिक पुस्तकें तो थीं ही, साथ-साथ उर्दू और हिंदी तथा अंग्रेजी में लिखी अनेक विषयों की पुस्तकें भी थीं। राही इस दृष्टि से भाग्यशाली थे कि उन्हें एक शानदार शैक्षिक और सांस्कृतिक वातावरण विरास्त में ही मिला था। इसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़े बिना नहीं रहा। बचपन में ही बोन टी. बी. के शिकार होने के कारण कुछ वर्षों तक उन्हें बिस्तर पर ही पड़े रहना पड़ा। इन दिनों में पुस्तकें ही उनका सहारा थीं। पुस्तकों ने उनके मन की हीनता की भावना को कम किया। उनमें एक नया आत्मबल उत्पन्न हुआ। इस दौरान उन्होंने अनेक विषयों पर पुस्तकें पढ़ी। इसी समय उन्होंने कुछ लिखना भी शुरू किया था। अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए वे पढ़ने-लिखने का सहारा लेते थे। पढ़ने-लिखने की उनकी यह आदत आगे चलकर उनके व्यक्तित्व का एक अविभाज्य अंग बन गई। टी. बी. बीमारी उनके लिए वरदान सिद्ध हुई। उनका संवेदनशील और भावुक हृदय और भी भावुक बनकर कवि और लेखक के रूप में प्रकट हुआ। राही मासूम रजा मूलतः कवि हृदय के व्यक्ति थे। बचपन में ही उन्होंने शायरी लिखना शुरू किया था। प्रतिवर्ष मोहर्रम मनाने गंगौली आया करते थे। उनके परिवार में सभी रिश्तेदार इकट्ठा होते थे। मोहर्रम में गाने के लिए नौहों की धुने तैयार की जाती और उन्हें गाने की होड़ लग जाती। राही मासूम सबका हिरो और लिड़र रहता था। राही स्वयं

रचित नौहें यहाँ पर गा-गाकर सुनाते और सबको आश्चर्य में डालते थे। जैसा कहा गया है, मोहर्रम के त्यौहार का उनके जीवन में एक खास महत्त्व था। उनकी कविताओं में जो उनकी भावनाएँ उमड़कर आती हुई हमें दिखाई देती हैं, यह वास्तव में मोहर्रम की ही देन है। उनके साहित्यिक जीवन पर इन दिनों का काफी प्रभाव दिखाई देता है।

1.7 कवि से कथाकार -

प्रारंभ से ही राही मासूम रजा उर्दू में कविताएँ करते थे। सन् 1948 में डॉ. अजमल अजमली से उनका परिचय हुआ और यह परिचय आगे चलकर मित्रता में परिवर्तीत हुआ। इन दिनों लखनौं, इलाहाबाद में उनका आना बढ़ गया था। इलाहाबाद में अनेक बड़े साहित्यकारों से इनका परिचय हुआ। डॉ. एजाज हुसैन जैसे उर्दू के बड़े साहित्यकार भी उनकी शायरी से प्रभावित हुए थे। राही जी को अनेक साहित्यकारों से बढ़ावा मिला, जिसमें अब्बास हुसैनी, जमाल रिजवी, शकील जमाली, शायर किराख गोरखपुरी, प्रसिद्ध उपन्यासकार उपेंद्रनाथ अश्क आदि कई लोग थे। इन लोगों के संपर्क में आने के कारण इनकी साहित्यिक गतिविधियाँ बढ़ती गई थीं। इनमें से अधिकांश विद्वान प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे, जो राही के विचारों से मिले जुले थे। डॉ. एजाज हुसैन ने इसी समय 'नकहम' क्लब की स्थापना की। इसका पहला सम्मेलन गोरखपुर में और दूसरा दानापुर पटना में संपन्न हुआ। राही नियमित रूप से इन गतिविधियों से संबंध रखते थे। अब तक राही एक शायर के रूप में उर्दू साहित्य विश्व में प्रसिद्ध हो चुके थे। इन्हीं दिनों उनका पहला उर्दू उपन्यास 'मुहब्बत के सिवा' सईद प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। उसे उस समय तो कोई खास प्रसिद्धि नहीं मिली। लेकिन उस समय यह कोई नहीं जानता था कि यही उपन्यास आगे चलकर देवनागरी लिपि में लिखा जाएगा और 'आधा गाँव' नाम से हिंदी साहित्य जगत् में प्रसिद्ध होगा। यही वह उपन्यास है कि जिसने राही जी को हिंदी जगत् में स्थापित किया और उन्हें उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्राप्त हुई।

उर्दू उपन्यास 'मुहब्बत के सिवा' की नाकामयाबी के कारण राही मासूम रजा ने अपना नाम बदलकर 'शाहीर अख्तर' और 'अक्काक हैदर' रख दिया और वे उर्दू में इन दो नामों से लिखने लगे। उर्दू में उस समय उन्होंने करीब तीन उपन्यास लिखे। सन् 1968 में 'आधा गाँव' के नाम से प्रकाशित हुआ। राही सन् 1950 से सन् 1958 तक इलाहाबाद रहे। उन दिनों इलाहाबाद

साहित्यिक गतिविधियों का गढ़ था। बराबर साहित्यिक गोष्टियाँ होती रहती। राही साम्यवादी से प्रभावित होने के कारण इलाहाबाद के प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुड़े रहे। इन्हीं दिनों हिंदी में निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृत राय, शमशेरबहादूर सिंह, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, हरिवंशराय बच्चन आदि कवियों और लेखकों का बोलबाला था। उर्दू साहित्यकारों में एजाज हुसैन, फिराक गोरखपुरी, नेग इलाहाबादी, बलवंत सिंह, वामिल जौनपुरी, अख्तर जमाल, अजमल अजमली आदि प्रसिद्ध थे। उस समय की प्रसिद्ध साहित्य संस्था 'परिमल' में सभी उर्दू हिंदी के साहित्यकार समान रूपसे भाग लेते थे। उनमें साहित्यिक गतिविधियों के संबंध में अकसर चर्चा हुआ करती थी। इन लोगों में कुछ काँग्रेस के गांधीवाद का समर्थन करनेवाले थे, तो कुछ साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित थे। साम्यवादी विचारधारा रखनेवालों का अपना एक प्रगतिशील लेखक संघ था। राही इन सभी साहित्यिक गतिविधियों से जुड़े रहे। राही पर धर्मवीर भारती और कवि बच्चन से उनका परिचय हुआ तो आगे चलकर मित्रता में परिवर्तित हुआ।

1.8 राही मासूम रजा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विकास -

इलाहाबाद के साहित्यिक वातावरण में राही जी की साहित्यिक प्रतिभा प्रस्फुटित हुई। इसी समय इलाहाबाद में 'फसाना' नामक एक साहित्यिक क्लब था, जिसका दृष्टिकोण पूर्णतः यथार्थवादी था। इसी नाम से वे एक उर्दू पत्रिका भी निकालते थे। इसका प्रकाशन दिल्ली से होता था। राही साहब अपनी कविताएँ तथा लेख इसमें प्रकाशित करते थे। 'कारवाँ' नामक और एक पत्रिका निकलती थी जिसके संपादक एजाज हुसैन थे। इस पत्रिका में भी उनकी कविताएँ और लेख प्रकाशित होते थे। राही मासूम रजा ने इन दिनों काफी साहित्य सृजन किया, लेकिन 'शाहिर अख्तर' इस नाम से। वैसे 'कारवाँ' उर्दू की उच्च स्तरीय साहित्य पत्रिका थी, इस कारण राही को कवि के रूप में काफी प्रसिद्धि भी मिली।

इन्हीं दिनों और एक घटना के कारण राही चर्चा का विषय बने रहे। उनके मित्र डॉ. अजमल अजमली की एक नज्म 'काफी हाऊस की वापसी' प्रकाशित हुई थी, जिसमें उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हिंसात्मक मार्ग का अनुसरन करने को कहा था। राही जी को मित्र के विचार पसंद नहीं आए और उन्होंने उसका विरोध किया। उनका विचार था कि हिंसा से समस्या

का समाधान नहीं मिल सकता। दोनों में काफी बहस हुई और उसी को प्रसिद्धि भी मिली। फलस्वरूप उस समय उत्तरी भारत से साहित्य जगत् में यह धारणा पैदा हो गई कि राही में विचारों की स्पष्टवादिता, तर्कशुद्ध जवाब देने की प्रवृत्ति तथा हौसला और हिम्मत है। इस प्रकार साहित्य जगत् में उनकी साख धीरे-धीरे बढ़ती गई। उनके ये तीखे तेवर आगे चलकर उनकी ख्याति के कारण बने। डॉ. अजमली से वैचारिक मतभेद होने पर भी उनकी मित्रता में कोई अंतर नहीं आया।

सन् 1948-49 का वर्ष राही के जीवन में बड़ा महत्त्व रखता है। देश विभाजन की आग में अभी भी जल रहा था। चारों ओर हिंसा और नफरत का तांड़व चल रहा था। विभाजन के संबंध में राही मासूम रजा जिन्ना को पूर्ण रूप से उत्तरदायी मानते हैं। विभाजन के कारण राही को जो सद्मा पहुँचा उसका चित्र सभी उपन्यासों में हमें देखने को मिलता है। वे कहना चाहते थे कि वास्तव में हमें आजादी नहीं मिली है, साथ ही सारे देश का नेतृत्व भी अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में चला गया है। साम्यवादी विचारों के प्रति प्रतिबद्ध होने के कारण उनके विचारों में जब कभी साम्यवादी शासन आएगा तब देश में वास्तविक आजादी का आगमन होगा, देश में अमन और चैन रहेगा। सांप्रदायिक दंगों ने तो उन्हें हिला ही दिया था। उस समय के उनके मन का ओभ उनकी अनेक कविताओं में और उपन्यासों में देखने को मिलता है, जिस प्रकार भीष्म साहनी के 'तमस' इस उपन्यास में सांप्रदायिक दंगों का चित्रण दिखाई देता है।

राही विभाजन के पूर्व इलाहाबाद में डॉ. मुस्तफा के घर रहा करते थे। लेकिन विभाजन के बाद मुस्तफा पाकिस्तान चले गए। इसका राही को बड़ा दुःख हुआ। वे उनका घर छोड़कर 'हसन् मंझिल' जहाँ पर 'नहकस' का कार्यालय था, वहाँ पर रहने लगे। इलाहाबाद में ही रहकर उन्होंने बी. ए. समकक्ष 'अदीब-माहिर' की परिक्षा उत्तीर्ण की और यहीं से उनका इलाहाबाद भी छूट गया।

सन् 1958 में राही इलाहाबाद छोड़कर अलीगढ़ आ गए, इलाहाबाद से अलीगढ़ आना राही के जीवन में अमूलाग्र परिवर्तन का कारण बना। उनके बड़े भाई मुनिस रजा के कहने पर उन्होंने अलिगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में एम्. ए. उर्दू में दाखिल हुए। अलीगढ़ आने के पूर्व ही उनके कई उर्दू काव्य संग्रह जैसे- 'रस्मेमय', 'मौजंसेबा', 'नया साल', 'अजनबी शहर', 'अजनबी रास्ते' आदि प्रकाशित हुए थे। एक उर्दू शायर के रूप में उनको काफी प्रसिद्धि भी मिल चुकी थी।

अलीगढ़ आने पर वहाँ के साहित्य जगत् में अपनी पहचान बनाने और स्थान निर्माण करने में वे लग गए। इस समय उनकी आयु 32 वर्ष की थी। क्लास के सभी विद्‌यार्थी उनसे काफी कम उम्र के थे। लेकिन जल्दी ही वे विश्वविद्‌यालय में प्रसिद्‌ध हुए, उनका व्यक्तित्व और बातचीत करने का ढंग ही आकर्षक था। सभी छोटे-बड़े उनकी ओर आकर्षित होते थे। आज भी अलीगढ़ विश्वविद्‌यालय चले जाने पर पुराने लोग उनकी यादों में खो जाते हैं। हम अंदाजा लगा सकते हैं कि वे उस समय कितने लोकप्रिय छात्र रहे होंगे। मित्रों के साथ युनिवर्सिटी कॅन्टीन में बैठ कर गरम-गरम चाय की चुसकियाँ लेते हुए टहाके लगाना, जोर-जोर से किसी विषय पर बहस करना, हँसी-मजाक करना उनके स्वभाव की विशेषता थी। साहित्कि और राजनीतिक विषय पर उसके प्रत्येक पहलू से पूरी तरह परिचित रहते। राही हार मानते ही नहीं थे। बहस के दौरान वे अपनी प्रतिष्ठा को भूल जाते। वास्तविकता तो यह है कि उनका 'ईगो' हमेशा जागृत रहता था। सन् 1960 के आसपास का समय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्‌यालय के इतिहास में अलग ही पहचान रखता है।

सन् 1960 तक राही उर्दू साहित्य में अपना स्थान बना चुके थे। एक शायर के रूप में उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई थी। अलीगढ़ आने पर उनका साहित्यिक व्यक्तित्व और भी निखरा। उस समय उर्दू साहित्यकारों में जड़बी, शहरबार, शहर यार, रशीद, अहमद सिंह की, दिजवान हुसैन आदि प्रतिष्ठित साहित्यकार थे।

इन सभी का दृष्टिकोण प्रगतिशील था। राही भी इन लोगों में सम्मिलित हो गए। एम्. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास कर उन्होंने शानदार सफलता प्राप्त की, साथ ही प्रबल आत्मविश्वास का प्रदर्शन भी मिला। उनके जिद्‌दी स्वभाव का परिचय फिर एक बार मिला। यह भी सिद्‌ध हुआ कि जो वे ठान लेते हैं उसे करके ही दिखलाते हैं। एम्. ए. (उर्दू) पास करने के उपरांत उनके हौसले और भी बुलंद हुए और उन्होंने 'तिलस्म-ए-होशरूबा' तहजीबी अनासी पर शोध करना प्रारंभ किया।

अलीगढ़ के साहित्यिक वातावरण में राही नए तेवर, नया लहजा, नया अंदाज लेकर उतरे उनका मानना था कि साहित्यकार में प्रतिस्पर्धी की भावना होनी चाहिए तभी वह जीवित रह सकता है। वे ऐसे सवाल लेकर अलीगढ़ के साहित्यकारों के सामने उपस्थित हुए कि जिनके जवाब उनके पास नहीं थे। राही में जो स्पष्टवादिता थी वहाँ के साहित्यकारों में नहीं थी। राही स्वभाव से

अहंवादी जरूर थे, लेकिन उनमें इतना धैर्य भी था कि वे उससे हटकर विचार कर सके। वे अपने विचारों की सीमाओं में कभी कैद नहीं रहे। उदार मानस से वे उन विचारों को स्वीकार करते जिनसे वे प्रभावित हुए हैं। भाषा के बंधन को भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया वे जो भी कहना चाहते डंके की चोट पर कहते। अलीगढ़ में रहकर वे इलाहाबाद से जुड़े रहे। वे बदलते हुए समय की माँग को पहचान रहे थे। हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि के स्वर्गीय भविष्य को उन्होंने पहचान लिया था। इसके लिए वे स्वयं को तैयार कर रहे थे। इसके विपरीत उर्दू साहित्यकार हिंदी के बढ़ते प्रभाव से भयभयीत हो रहे थे। राही ने हिंदी से खौफ न खाकर उससे प्रेम करना प्रारंभ किया। यही अंतर राही और अन्य उर्दू साहित्यकारों में था।

राही साहब के अलीगढ़ के दिन, विशेषतः शोध का समय, राही के वैयक्तिक जीवन का समय था। राही के जीवन की उदासी खत्म हुई। अब वे मनचले हँसते, खेलते। मित्रों में 'कॉफी हाऊस' में बैठकर बहस लड़ानेवाले मस्त, मौला, शोध-छात्र, शायर और लेखक थे। युनिवर्सिटी का एक भी समारोह ऐसा नहीं होता, जिसमें राही सक्रिय रूप से हाजिर नहीं है। मित्रों की टोली में उनको लेकर हँसी-मजाक होते रहता। जैसे आम विश्वविद्यालयों में होता है, वैसे ही अलीगढ़ में भी किसी विद्यार्थी का नाम किसी-न-किसी से जोड़ा जाता था। राही के संबंध में भी कई अफवाएँ उड़ाई जाती थीं। उनका व्यक्तित्व ही आकर्षक था। विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं में वे हमेशा चर्चा का विषय रहा करते थे। इसमें से एक प्रसंग में तो राही को बदनाम करने की कोशिश की गई। खूबसूरत लड़कियों के नाम उनके साथ जोड़े गए थे। इस घटना में सच्चाई कितनी थी ? कोई नहीं जानता। लेकिन उस घटना के बाद वे कुछ बुझे-बुझे रहने लगे थे। इस घटना की चोट उन्हें गहराई तक हो गई। तभी तो उन्होंने अपनी एक नज्म में अपने विरह को इन शब्दों में अभिव्यक्ति प्रदान की है -

> ''प्यास जीने की अनामत है, बुझाके लेले,
> यह ख्वाब देखन देखे है, न दिखलाये है।
> हाँ, उन्हीं लोगों से दुनिया में शिकायत है हमें
> हाँ वही लोग, जो अक्सर हमें याद आये हैं।''[1]

---

1. राही मासूम रजा - मैं एक फेरीवाला, पृ. 17

उनके मन की संवेदनशीलता, भावुकता, उदासी एक साथ इसमें प्रकट हुई है। एक संवेदनशील और भावुक शायर की पहचान इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाती है-

"हम भी जुगनु की तरह सहारा में
शाम होती है, तो जल जाते हैं।"[1]

अलीगढ़ के दिनों में उनकी एक गजल बहुत प्रसिद्ध हुई थी। इस तरह आगे चलकर इस श्रृंखला की कड़ी के रूप में 'ओस की बूँद' की रचना हुई। 'असंतोष के दिन', 'कटरा बी आर्जू', 'हिम्मत जौन पुरी', 'सीन-75', 'दिल एक सादा कागज', जैसे एक से एक उत्कृष्ठ उपन्यासों का सृजन राही की लेखनी से हुआ।

'मैं एक फेरीवाला' की भूमिका डॉ. धर्मवीर भारती जी ने लिखी है। राही का कहना है कि धर्म अपनी जगह है और संस्कृति अपनी जगह। दोनों अलग-अलग चीजें हैं। लेकिन संस्कृति का स्वतंत्र व्यक्तित्व होता है, जिसे हम धार्मिक बंधनों से नहीं बँध सकते। संस्कृति का दायित्व विस्तृत होता है और धर्म सीमित रहता है। उन्होंने कभी भी नकली धर्म निरपेक्षता का दावा भी नहीं किया। अपनी धरती के प्रति जो लगाव, प्रेम समर्पण और भक्ति थी, उसे राही ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है। यह उनकी राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रनिष्ठा दिखाई देती है।

राही सच्चे अर्थों में अपनी जमीन से जुड़े हुए कवि, लेखक थे। अपनी मिट्टी से जो उन्हें प्यार था, वह उनकी रग-रग से व्यक्त होता था। वे चाहते तो उर्दू की रंगीन शेरशायरी में मुग्ध हो जाते लेकिन उन्होंने वह रास्ता छोड़कर जोखिम का रास्ता अपानाया। उर्दू के सीमित दायरे से निकलकर हिंदी के विशाल फलक पर स्वयं को लाकर खरा किया। चाहे भारतीय संस्कृति हो, चाहे हिंदी भाषा का प्रश्न हो, उन्होंने स्वयं को बेबाकीपन से खोल दिया। हिंदी उर्दू के भेद को लिखने की उन्होंने बहुत कोशिश की। वे तो भाषा की सहजता और स्वाभाविकता में विश्वास करते थे।

राही जी ने 'आधा गाँव' से हिंदी गद्य में और 'मैं एक फेरीवाला' से कविता की धारा में प्रवेश किया है। अपनी इन रचनाओं को उन्होंने अनुवाद न कहकर, उन्हें बड़े साहस के साथ हिंदी रचनाएँ घोषित किया।

---

[1] राही मासूम रजा - मैं एक फेरीवाला, पृ. 251

1.9 अलीगढ़ से निर्वासित और मुंबई आना -

राही ने बड़ी मेहनत के साथ अपना शोध-कार्य पूरा किया और उन्हें अलीगढ़ विश्वविद्यालय से पीएच्. डी. की उपाधि प्राप्त हुई। राही जी को अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में तुरंत अधिव्याख्याता की नौकरी भी मिली। अलीगढ़ में कुछ वर्षों तक वे उर्दू साहित्य पढ़ाते रहे। इधर साहित्य सृजन भम अविरत रूप से जारी था। इसी समय राही के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। सन् 1966 में राही ने कर्नल युनुस की पत्नी श्रीमती नैयर से विवाह किया। उनके इस विवाह से अलीगढ़ विश्वविद्यालय परिसर और अलीगढ़ के साहित्य जगत में अफवाहों का एक तूफान-सा आया। मुस्लिम कट्टर पंथियों को यह लगता था कि एक अध्यापक किसी की बीवी से प्रेम-विवाह करे अथवा किसी की बीवी को उठाकर अपने घर में लाकर रख दे इस घटना को लेकर उन पर अनेक आरोंप लगाएं गए। उनके साथ बुरा व्यवहार भी किया गया। कुछ पुराने दुश्मनों ने मौके का फायदा उठाकर उन्हें बदनाम किया तथा उन्हें अलीगढ़ छोड़कर जाने के लिए मजबूर किया गया। अंततः राही को नौकरी छोड़नी पड़ी और अलिगढ़ भी छोड़ना पड़ा। इतना अपमानित और जलील किए जाने के बाद स्वाभिमानी राही का अलीगढ़ रहना असंभव था। डॉ. कुवरसिंह जो इस घटना के प्रत्यक्षदर्शि थे उन्होंने कहा है- “जिस तरह झूठे आरोप लगाकर सन् 1966 में उन्हें उर्दू विभाग की अधिव्याख्याता की नौकरी से बाहर किया था, उसकी एक लंबी कहानी है, जो अलीगढ़ में राही के साथ हुआ, दूसरे स्थानों पर इससे मिलती-जुलती घटनाएँ अन्य प्रतिभासंपन्न अध्यापकों और साहित्यकारों के साथ आए दिन होती रहती हैं। असल में हमारे विश्वविद्यालय में पीछे के दरवाजे से चाटुकारिता और सिफारिश से जो लोग पहुँचते हैं वे एक प्रकार की हीन भावना से निरंतर ग्रस्त रहते हैं। वे अपने से आगे, बराबर या उनकी प्रतिभा को चुनौति देनेवाले किसी व्यक्ति को विभाग में आने ही नहीं देते।”[1]

राही ने अलीगढ़ में रहते हुए अपनी प्रतिभा और कार्य के बल पर अनेक लोगों के दिल जीत लिए थे, जिनमें अलीगढ़ विश्वविद्यालय के कुलपति बद्रुदीन तैय्यब जी भी थे। तैय्यब जी उनकी बड़ी इज्जत करते थे। यह बात भी बहुत से लोगों को अच्छी नहीं लग रही थी। उनका उत्कर्ष न सहकर ही अनेक लोगों ने उनके विरुद्ध झूठ-मूठ आरोप लगाना और बदनाम करना शुरू

---

1. डॉ. कुवरपाल सिंह - राही की सुबह, पृ. 161

किया। अलीगढ़ उन्होंने बड़े दुःख के साथ छोड़ा। अलीगढ़ ने उन्हें बहुत कुछ दिया था। उनकी साहित्यिक प्रतिभा और भी निखरकर सामने आयी। उन्होंने बंबई जाकर फिल्म उद्योग से जुड़ने का निश्चय किया। बंबई उनके लिए कोई नया शहर नहीं था। बंबई में उनके अनेक मित्र थे। उनके छोटे भाई अहमद रजा बंबई ही में ही रहते थे। इसीलिए बंबई में रहने का प्रश्न नहीं था। अतः उन्होंने दिल्ली छोड़कर फिल्म दुनिया में जाकर अपनी किस्मत अजमाने का फैसला किया। अलीगढ़ के वास्तव्य में उन्हें नाटक लिखने का अनुभव था।

राही का बंबई आना उनके संपूर्ण जीवन एवं व्यक्तित्व को परिवर्तित करनेवाला सिद्ध हुआ। अलीगढ़ में प्रसिद्ध अभिनेता भारतभूषण के बड़े भाई रमेशचंद्र के घर उनका आना जाना था। रमेशचंद्र एक होनहार वकील थे, उनका लड़का अशोक युनिवर्सिटी में पढ़ता था और राही से उसकी मित्रता थी। अशोक ने अपने पिता से उनका परिचय करवाया। रमेशचंद्र फिल्म निर्माता भी थे। राही रमेशचंद्र और अशोक के साथ एक-दो-बार बंबई आए थे। इस तरह से अप्रत्यक्ष रूप से राही का फिल्म उद्योग से संपर्क आया था।

राही अपनी मजबूरी के कारण अध्यापन और साहित्य सृजन का क्षेत्र छोड़कर बंबई आए थे, इस संबंध में उनकी पत्नी नैयर रजा ने एक साक्षात्कार में कहा है, "उन्हें फिल्म में काम करने का शौक नहीं था, मजबूरी थी। सन् 1950 में अस्थायी रूप से ऑल इंडिया रेड़ियो में काम किया था। हालात ही कुछ ऐसे थे, करते क्या ? फिल्म लाईन पकड़ ली। ....फिल्मों में शोहरत है, लेकिन सुकून नहीं है। वहाँ साहित्य पर काम का दर्जा था।"[1] स्पष्ट है कि बंबई आकर उनके साहित्य लेखन में अवरोध उत्पन्न हुआ। अपनी प्रतिभा के बल पर उन्होंने कुछ ही दिनों में अपने पैर जमाना शुरू किया। वैसे राही स्वयं फिल्मलेखन को घटिया काम मानते थे। बंबई के फिल्म दुनिया में कायम होना कोई आसान काम नहीं था। उन्हें यहाँ पर भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना पड़ा।

बंबई में उन्होंने फिल्मों के संवाद और कथानक लिखने का काम आरंभ किया। राही इसके माध्यम से पैसे और प्रसिद्धि दोनों चाहते थे। इस समय पैसा कमाने का दूसरा साधन भी उनके पास नहीं था। बंबई आने पर धर्मवीर भारती, कमलेश्वर, कृष्णचंद्र जैसे पुराने मित्रों और

---

[1] श्रीमती नैय्यर का रजा से साक्षात्कार, राही की सुबह, पृ. 17

साहित्यकारों से मिले। इन सभी लोगों से राही को बहुत सहायता मिली, जो बात कई लोगों को जीवन भर के प्रयत्न के बाद भी नहीं मिलती वह राही को कुछ दिनों में ही मिल गई। इसके पीछे उनकी लगन कठिन परिश्रम और असामान्य प्रतिभा का ही हाथ था। राही इस समय छुट-पुट रूप से हिंदी उर्दू में भी लिखा करते थे। फिल्में के कहानियाँ, संवाद और गीत भी लिखते थे। धीरे-धीरे राही बंबई के फिल्मी वातावरण में स्वयं को समायोजित करने लगे। फिल्मी हस्तीयों से उनका परिचय बढ़ने लगा। उनका परिचय दिलीपकुमार से भी हुआ। अलीगढ़ निवासी और अब बंबई आकर फिल्म इंडस्टी में जमे रमेशचंद्र जी ने उन्हें अपनी फिल्मों के लिए लिखने का निमंत्रण दिया। इन लोगों ने जल्दी ही राही की प्रतिभा को पहचान लिया। कमाल अमरोही ने उन्हें अपना काम हल्का करने के लिए राही से लिखवाना शुरू किया। जल्दी ही उनके मित्रों की सलाह पर राही स्वयं 'राही मासूम रजा' के नाम से स्वतंत्र रूप से फिल्मों के लिए लिखने लगे और बहुत ही कम समय में उन्हें काफी सफलता और प्रसिद्धि मिली।

राही ने करीब-करीब 300 फिल्मों के लिए संवाद, कथा और गीत लिखे। राही को पैसा और प्रसिद्धि ने मालामाल कर दिया। उन्होंने दूरदर्शन पर प्रसारित 'महाभारत' की कथा और संवाद लिखे। 'महाभारत' द्वारा राही का नाम भारत में घर-घर में पहुँचा। महाभारत के संवादों ने उन्हें जो प्रसिद्धि और यश दिया वह और किसी फिल्म के संवादों अथवा कथा ने नहीं दिया। राही ने भारतीय फिल्म इंडस्ट्री को 'महाभारत' सिरियल की कथा और संवादों द्वारा जो निधि दी वह वास्तव में अमूल्य और अद्वितीय है। महाभारत के कथा और संवाद लेखक के रूप में राही का नाम भारतीय फिल्मों के इतिहास में अमर रहेगा। एक मुसलमान व्यक्ति हिंदू के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ की कथा पर आधारित फिल्म की कथा लिखता है और वह इतनी अद्वितीय बनती है कि बड़े-बड़े हिंदू पंडित भी दाँतोतले ऊँगली दबाकर रह गए। यह बात अपने आप में अनुठी है। भारतीय संस्कृति, इतिहास और पुराण का उन्हें कितना गहरा ज्ञान था। इसका यह ज्वलंत उदाहरण है। 'महाभारत' दूरदर्शन की संवादों ने उन्हें एक ओर निरंतर रूप से महाभारत की कथा से जोड़ा तो दूसरी ओर इन संवादों ने उन्हें राष्ट्रीय और आंतरराष्ट्रीय ख्याति के शिखर पर पहुँचाया।

फिल्म के छोटे पर्दे पर उनकी अंतिम कृति 'निम का पेड़' आयी और वह भी दूरदर्शन के द्वारा प्रसारित होने पर काफी सराही गई।

राही अपने अंतिम दिनों तक लिखते रहे। राही ने अपने हृदय की व्यथा इन पंक्तियों में व्यक्त की है-

> ''आज मैं अपने घर में तन्हा,
> तीस और तीन चिराग जलाए
> सोय रहा हूँ
> आखिर मैंने क्या खोया है
> आखिर मैंने क्या पाया है।''[1]

राही को शिकायत थी कि उनके इस दिल के दर्द में कोई भी शरीक नहीं होता, इतना ही नहीं, उनके अंदर का दूसरा आदमी भी यह दर्द नहीं समझाता, वे अपनी पत्नी को भी कभी इसमें शरीक कर उसे दुःखी नहीं बनाना चाहते। जीवन के अंतिम क्षणों तक वे बंबई में रहे। उनका संपूर्ण दिनक्रम बहुत वस्ततापूर्ण होता। वे रात के दो-दो बजे तक लिखते रहते थे। सुबह आठ बजे उठ जाते और फिर साडे नौ बजे तक घर से निकलते थे। वे अकसर अपने घर का ही भोजन लिया करते थे। खाने-पीने के बड़े शौकिन थे। अपनी बहन के हाथ का बनाया हुआ चने का हलवा उन्हें बहुत पसंद था। पान का डिब्बा और बटुआ उनके साथ हमेशा रहा करता था।

फिल्म इंडस्ट्री में कदम रखने के बाद उनकी आर्थिक हालात में बहुत परिवर्तन आया। उन्होंने बॅन्ड स्टँड बांदरा में एक बड़ा प्लॅट खरीद लिया और अपने परिवार के साथ रहने लगे। बंबई फिल्म उद्योग की हस्तियों के रहन-सहन में दिखाई देनेवाली अलिशानता उनके घर में भी दिखाई देने लगी। उनकी कई फिल्मों को फिल्म उद्योग से जुड़े प्रतिष्ठित पुरस्कार भी प्राप्त हुए, जैसे- 'मैं तुलसी तेरे आंगन की', 'लम्हे', 'प्रेम कहानी', 'तवायफ' आदि। 'लम्हे' उनकी आखरी फिल्म साबित हुई, जिसे फिल्म अवार्ड भी मिला। इसके बाद उन्होंने 'आईना' फिल्म लिखना शुरू किया था, लेकिन बीमारी के कारण वे उसे पूरा नहीं कर सके। वे समय के बड़े पाबंद आदमी थे। अपना काम निश्चित समय पर पूरा करते थे। बीमारी के दिनों में भी वे लिखते रहे और निर्माताओं के साथ किए गए अपने वादों को निभाते रहे। अश्लिल संवाद लिखना राही जी को बिलकुल पसंद नहीं था। राही जी के घर पर फिल्म जगत् की बड़ी-बड़ी हस्तियाँ आती थी।

---

[1] कमलेश्वर - गर्दिश के दिन, पृ. 144

बी. आर. चोपड़ा ने उनकी वास्तविक प्रतिभा को पहचाना था। राही का भावूक कवि हृदय, भारतीय संस्कृति का गहरा ज्ञान और प्रेम से चोपड़ा बहुत प्रभावित हुए थे, यही कारण है कि उन्होंने महाभारत जैसे महान महाकाव्य पर फिल्म बनाते समय संवाद लेखन का काम राही को बड़े विश्वास के साथ सौंपा था। राही साहब ने महाभारत के संवाद लेखन का काम एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया था।

राही ने बंबई आकर काफी पैसा और प्रसिद्धि तथा नाम कमाया लेकिन जो साहित्य कृति वे 'आधा गाँव' के द्वारा दे पाए वैसी कृति वे फिर साहित्य जगत् को नहीं दे सके। वे बहुत खर्चिले स्वभाव के थे। जितना कमाते उतना खर्च कर देते। संपत्ति या जायदाद कमाने के चक्कर में वे कम नहीं पड़े। अपने सभी भाई-बहनों में सबसे अधिक शोहरत उन्हें ही मिली। घर और बाहर का प्यार भी उन्हें ही सबसे अधिक मिला। वे जहाँ जाते सभी का दिल जीत लेते। वे अपने रिश्तेदारों से मिलने पाकिस्तान भी गए थे। वहाँ पर उनके रिश्तेदारों ने उनकी पहचान एक शायर के रूप में करना चाही, लेकिन उन्होंने इसे मना किया। वे मिलनेवालों के साथ कभी छोटा-बड़ा फर्क नहीं करते और सभी से समान रूप से मिलते। बड़ा-छोटा, अमिर-गरीब इस प्रकार का भेदभाव उनके पास नहीं था।

उन्होंने अपनी इकलौती लड़की का विवाह उनके बड़े भाई मुनिस रजा के बेटे एजाज युनिस से किया जो आजकल अमरिका में है। राही सन् 1990 में अपनी लड़की से मिलने अमरिका भी गए थे। गुनि रजा बताते हैं कि जब लोगों को पता चला कि महाभारत के संवाद लेखक राही मासूम रजा इन दिनों अमरिका में है, तो उन्हें मिलनेवालों की भीड़ जमी-सी-जमी रह गई। एक खास कार्यक्रम में उनका भारतीय नागरिकों द्वारा अभिनंदन भी किया।

अपनी पुत्री के विवाह का उत्तरदायित्व पूरा करने के बाद फिल्मी कामों से मुक्ति पाकर वे फिर से अलीगढ़ जाना चाहते थे। वे वहाँ जाकर सृजनात्मक लेखन करना चाहते थे। अलीगढ़ से उन्हें आत्मीय लगाव था ही। केवल वहाँ की गंदी राजनीति के कारण उन्हें अलीगढ़ छोड़ना पड़ा था। अपने जीवन में अलीगढ़, गाजीपुर और गंगौली को वे कभी नहीं भूल पाए। इन तीन शहरों के प्रति उनका आंतरिक प्यार ही उन्हें बार-बार बंबई छोड़ने के लिए कहता था। लेकिन वे बंबई की फिल्मी दुनिया में इतना फँस गए थे कि वे चाहकर भी बंबई छोड़ नहीं सके। बंबई के

सुखासीन जीवन की आदत उनके परिवारजनों को भी लग गई थी। उनका प्रतिदिन का खर्चा भी काफी था। अलीगढ़ जाकर शायद ही वे अपना दैनंदिन खर्चा पूरा कर सकते। उनकी आयु भी अब करीब 65 साल पार कर चुकी थी। फिर भी अलीगढ़ के प्रति उनका आंतरिक प्रेम उन्हें बार-बार अलीगढ़ बुलाता रहा। अपनी अत्याधिक व्यस्तता के कारण वे अपने स्वास्थ की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सके।

1.10 मृत्यु -

दिसंबर, 1991 में पहली बार मेडिकल चेकअप में उनके गले में कॅन्सर का पता चला। अत्याधिक पान तंबाकू के सेवन ने अपना काम पूरा किया था। इलाज के लिए वे अमरिका भी गए। वहाँ उनका ऑपरेशन भी हुआ, कुछ स्वास्थ्य लाभ होने पर वे फिर भारत लौटे। फरवरी में वे अलीगढ़ जानेवाले थे लेकिन फरवरी में ही उनकी तबीयत अचानक खराब हो गई। कॅन्सर पूरे गल में फैल गया। सात फरवरी से उनकी तबीयत और भी खराब होती गई और 15 मार्च, 1992 को उन्होंने इस दुनिया से सदा-सदा के लिए बिदा ली। सारे फिल्म इंडस्ट्री को उनकी मृत्यु से एक झटका-सा लगा। उनके दोहांत पर उनके एक घनिष्ठ बलदेव मिर्जा ने कहा, "मैं 15 मार्च, 1992 को अपनी जिंदगी का बूरा दिन मानता हूँ और उस दिन उपरवाले ने मुझ से मेरा मुकम्मल हिंदुस्थान छिन लिया।"[1]

उनके देहांत का समाचार तुरंत ही रेडियो और दूरदर्शन के द्‌वारा सारे देश विदेश में फैल गया। उनके प्रियजन, उन्हें चाहनेवाले मित्र, साहित्यकार, फिल्म उद्‌योग की बड़ी-बड़ी हस्तियाँ तथा आम जनता ने उन्हें श्रद्‌धांजलि अर्पित की। उनके अंतिम संस्कार में सम्मिलित होने के लिए अलीगढ़, गंगौली, गाजीपुर तथा अन्य जगहों से लोग दौड़कर आए। गाजीपुर में उनके देहांत पर तीन दिनों तक लोगों ने अपने व्यवहार बंद रखकर अपने लाड़ले पुत्र को श्रद्‌धांजलि अर्पित की। गाजीपुर के लोग उन्हें बेहद प्यार करते थे और स्वयं को गौरवान्वित भी करते थे। उन्की मौत पर गाजीपुर में एक शोक सभा का आयोजन भी किया गया। साथ ही उनकी स्मृति में गाजीपुर डिग्री कॉलेज में एक हॉल का निर्माण भी किया गया। उनकी याद में एक सड़क का नानकरण 'राही मासूम रजा' रोड कर दिया गया। गंगौली के लोगों ने अपने चहिते पुत्र को अलग-

---

[1] बलदेव मिर्जा - राही की सुबह, पृ. 11

अलग ढंग से सम्मान प्रगट कर अपनी आदरांजलि अर्पित की। इस तरह से सन् 1927 में जन्में राही जी की जीवनयात्रा 15 मार्च, 1992 को समाप्त हो गई। हिंदुस्थान का बेटा अपनी माँ की गोद में सदा-सदा के लिए चीर निद्राधीन हो गया।

1.11 राही मासूम रजा के कृतित्व का सामान्य परिचय -

डॉ. राही मासूम रजा ने अपने जीवन काल में उर्दू और हिंदी में विपुल साहित्य का सृजन किया। प्रकाशन क्रम अनुसार उनका साहित्य निम्न प्रकार से है-

1.11.1 हिंदी उपन्यास -

आधा गाँव	1966
टोपी शुक्ला	1967-68
हिम्मत जौनपुरी	1969
ओस की बूँद	1970
दिल एक सादा कागज़	1973
सीन-75	1977
कटरा बी आर्जू	1978
असंतोष के दिन	
छोटे आदमी की बड़ी कहानी (हिंदी)	

1.11.2 महाकाव्य -

'अठ्ठराह सौ सत्तावन' (हिंदी-उर्दू)

1.11.3 काव्य (हिंदी) -

मैं एक फेरीवाला

नया साल

मौजे गुल

रस्मे मय

1.11.4 उपन्यास (उर्दू) -

मुहब्बत के सिवा

अजनबी शहर

निष्कर्ष -

राही जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने जीवन में कभी भी परिस्थिति के सामने कभी हार नहीं मानी। उनका व्यक्तित्व अनेक प्रकार की घटनाओं से भरा-पूरा है। राही जी में जबरदस्त आत्मविश्वास, आत्माभिमान, जिंदादिल और जीवन के प्रति अटूट आस्था है। राही जी का जन्म संपन्न एवं सुशिक्षित शीआ परिवार में हुआ है।

गंगौली गाँव से उनके वालदैन गाजीपुर में बस गए थे जहाँ जिला कचहरी में उनके पिता वकालत करते थे। राही प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने के बाद उच्चशिक्षा के लिए अलीगढ़ आ गए, जहाँ उन्होंने एम्. ए. डिग्री विशेष सम्मान के साथ प्राप्त की। राही ने अपने शोध-प्रबंध 'तिलस्म-ऐ-होशरुबा' में चित्रित 'भारतीय जीवन का अध्ययन' पर पीएच्. डी. की डिग्री प्राप्त की।

उन्होंने सन् 1046 में लिखना शुरू किया। उनका पहला उपन्यास 'मुहब्बत के सिवा' सन् 1950 में उर्दू में प्रकाशित हुआ। राही कवि भी थे। उनकी कविताएँ सर्वप्रथम उर्दू में 1954 में प्रकाशित हुई। राही जी ने 'अठ्ठारह सौ सत्तावन' नामक एक महाकाव्य लिखा जो सन् 1965 में हिंदी में प्रकाशित हुआ। इस प्रकाशन से उन्हें आत्मबल मिला और भविष्य की रचनाओं के हिंदी में प्रकाशन का मार्ग खुला। उन्होंने सन् 1966 में एक जीवनी लिखी और इसके बाद तुरंत 'आधा गाँव' उपन्यास लिखा और राही का नाम उच्च कोटि के उपन्यासकारों में लिया जाने लगा।

अलीगढ़ में रहते हुए ही राही ने साम्यवादी दृष्टिकोण का विकास कर लिया था और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य भी हो गए थे। राही उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं और दोनों लिपियों में बड़ी सहजता के साथ लिखते रहे। वे मुस्लिम लीग की पृथकतावादी राजनीति की आलोचना करते और उसे देश के लिए घात समझते। सन् 1968 में राही मुंबई में आ गए। वे अपनी साहित्यिक गतिविधियों के साथ-साथ फिल्म के लिए भी लिखने लगे, जो उनकी रोजी-रोटी का साधन बन गया था।

राही स्पष्टवादी व्यक्ति थे जो अपने धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीय दृष्टिकोण के कारण लोकप्रिय हो गए। ऐसे स्वस्थ विचारों को उन्होंने हास्य और तेजस्विता से और भी प्रभावशाली बनाया है। राही की साहित्यिक यात्रा अलीगढ़ से शुरू हुई थी और मुंबई में आकर उनका गले में कॅन्सर होने के कारण निधन हुआ। राही जी का जीवन और उनके जीवन अनुभव उनके साहित्य में प्रतिबिंबीत हुआ दृष्टिगोचर होता है।